Mother Craft and Human Development

B.A. IV semester (NEP 2020)

Unit III

INFANCY

शैशवावस्था का अर्थ (Meaning of Infancy)

साधारणतः शिशु के जन्म के पश्चात् प्रथम 6 वर्ष की आयु शैशवावस्था मानी जाती है। हरलॉक का विचार है कि जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवस्था को भ्रूणावस्था ही कहा जायेगा और दो सप्ताह बाद बालपन (Babyhood) आरम्भ होता है। दो वर्ष के पश्चात् प्रारम्भिक बाल्यावस्था आती है जो 6 वर्ष की आयु तक रहती है। हरलॉक के ये विचार शैशव के सम्बन्ध में सूक्ष्म और व्यापक अर्थ की ओर संकेत करते हैं। सामान्य रूप से सभी मनोवैज्ञानिक जन्म से 5 अथवा 6 वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था मानते हैं। क्रो एवं क्रो ने लिखा है- "शैशवावस्था औसतन जन्म से 5 अथवा 6 वर्ष तक चलती है जिसमें इन्द्रियाँ काम करने लगती हैं और बालक रेंगना, चलना एवं बोलना सीखता है।"

शैशवावस्था का महत्त्व (Importance of Infancy)

मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में शैशवावस्था का सबसे अधिक महत्त्व है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक न्यूमैन का विचार है-"5 वर्ष तक की अवस्था शरीर और मस्तिष्क के लिये बड़ी ग्रहणशील रहती है।" इस अवस्था में जो कुछ सिखाया जाता है उसका तुरन्त प्रभाव पड़ता है। मनोविश्लेषणवादियों ने भी शैशव की ओर विशेष ध्यान देने हेतु बल दिया है। फ्रायड का विचार है-"मनुष्य को जो कुछ बनना होता है, आरम्भ से 4-5 वर्षों में ही बन जाता है।"

मनोवैज्ञानिकों ने अपने परीक्षणों के आधार पर शैशवावस्था के महत्त्व को सिद्ध कर दिया है। एडलर लिखता है-"शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।" क्रो एवं क्रो का विचार है- "बीसवीं शताब्दी को बालक की शताब्दी कहा जाता है।"

मनोवैज्ञानिकों के विचारों से शैशवावस्था को जीवन का आधार कहा जा सकता है जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण होता है।

शैशवावस्था की प्रमुख विशेषताएँ (Chief Characteristics of Infancy)

शैशवावस्था के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(1) शारीरिक विकास में तीव्रता- शैशवावस्था में शारीरिक विकास में तीव्रता होती है। बालक के जीवन के प्रथम तीन वर्षों में शारीरिक विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है। पहले वर्ष में लम्बाई और भार दोनों ही अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ते हैं। उसकी कर्मेन्द्रियों, आन्तरिक अंगों, मांसपेशियों आदि का उत्तरोत्तर विकास होता है।

(2) अपरिपक्वता- शैशवावस्था में शिशु शारीरिक और बौद्धिक रूप से अपरिपक्व होता है और शनैः शनैः स्वाभाविक रूप से पालन-पोषण द्वारा ही वह परिपक्व होता है।

(3) पर निर्भरता- जन्म के पश्चात् कुछ समय तक शिशु अन्य पर निर्भर रहता है। उसे भोजन और अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा स्नेह और सहानुभूति प्राप्त करने हेतु दूसरों पर ही आश्रित रहना होता है।

(4) मूल-प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार- शैशवकाल में अधिकांश व्यवहार मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। भूख लगने पर शिशु रोता है, क्रोधित होता है और जो भी वस्तु उसके पास आती है उसे मुँह में डाल लेता है।

(5) मानसिक क्रियाओं में तीव्रता शिशु की मानसिक क्रियाओं के अन्तर्गत स्मृति, ध्यान, कल्पना, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि का विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है। गुडएनफ ने लिखा है "व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है, उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है।"

(6) कल्पनाशीलता- शिशु में कल्पना की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है और वह कल्पना जगत् में विचरण करता है। थार्नडाइक ने लिखा है "3 से 6 वर्ष तक के बालक प्रायः अर्द्ध-स्वप्नों की हालत में रहते हैं।" रॉस का विचार है- "शिशु कल्पना में स्वयं नायक बन जाता है और कल्पना के द्वारा ही वह जीवन की कठोरता को दूर करता है।"

(7) सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता- शैशवावस्था में सीखने की गति अत्यन्त तीव्र होती है। गैसेल का विचार है- "बालक 6 वर्षों में बाद के 12 वर्षों से दूना सीख लेता है।"

(8) दोहराने की प्रवृत्ति- शैशवावस्था में किसी कार्य को दोहराने की विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसा करने में शिशु को आनन्द आता है। इसी आधार पर किण्डरगार्टेन और मॉण्टेसरी स्कूलों में बच्चों से गीत और रचना की आवृत्ति करवाई जाती है।

(9) अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति- शिशु सबसे अधिक और शीघ्रतापूर्वक अनुकरण विधि से सीखते हैं। वे परिवार में माता-पिता, भाई-बहन और अन्य सदस्यों के व्यवहार का अनुकरण करके शीघ्रतापूर्वक सीख जाते हैं।

(10) प्रत्यक्षात्मक अनुभव द्वारा सीखना- शिशु मानसिक रूप से परिपक्व न होने के कारण प्रत्यक्ष और स्थूल वस्तुओं के सहारे सीखता है। किण्डरगार्टेन और मॉण्टेसरी प्रणाली के अन्तर्गत उपहारों और शिक्षा उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनका निरीक्षण करके वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव प्राप्त करता है।

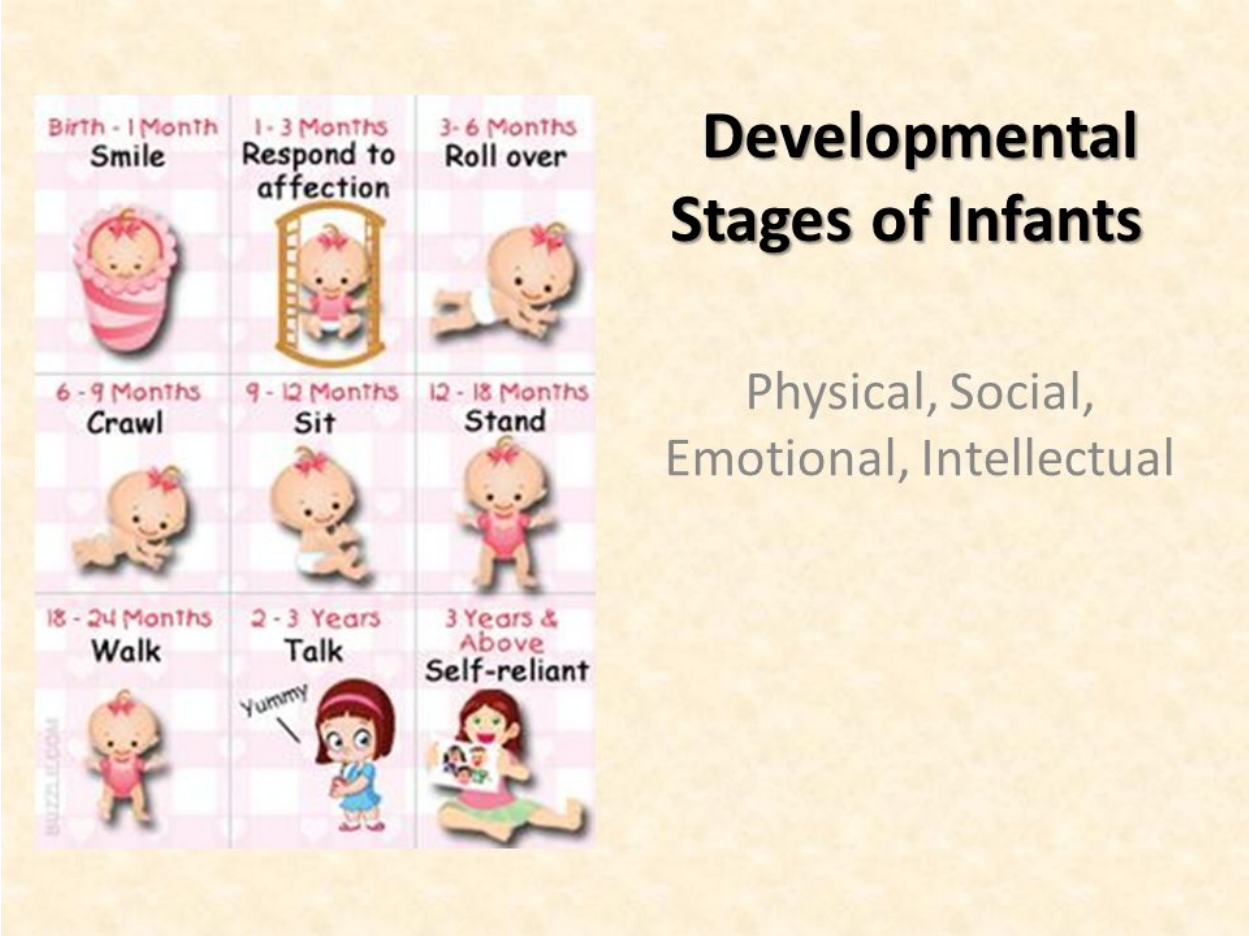

(11) संवेगों का प्रदर्शन- शिशु जन्म से ही संवेगात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। रोना-चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना आदि क्रियाएँ संवेगपूर्ण ही होती हैं। अधिकतर बाल मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि आरम्भ में शिशु में मुख्य रूप से चार संवेग पाये जाते हैं-भय, क्रोध, प्रेम और पीड़ा।

(12) आत्म-प्रेम की भावना- शैशवावस्था में आत्म-प्रेम की भावना अत्यन्त प्रबल होती है। इस समय शिशु चाहता है कि केवल उसे ही माता-पिता और भाई-बहन का पूर्ण स्नेह प्राप्त हो। ऐसा न होने पर वह अन्य बच्चों से ईर्ष्या करने लग जाता है। जो वस्तु अथवा खिलौना उसे दिया जाता है, उसे दूसरों को न देकर वह अपने पास ही रखना चाहता है।

(13) काम प्रवृत्ति- फ्रायड एवं अन्य मनोविश्लेषणवादियों का विचार है कि शैशवावस्था में शिशु की प्रेम भावना काम प्रवृत्ति पर आधारित होती है और यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है, परन्तु वह उसका प्रकाशन वयस्कों की तरह नहीं करता। शिशु का अपने अंगों से प्रेम करना, माता का स्तनपान करना और हाथ का अंगूठा चूसना आदि उसकी काम प्रवृत्ति के ही सूचक हैं।

(14) नैतिक भावना का अभाव- शिशुओं के अन्तर्गत नैतिक भावना का विकास नहीं हो पाता। उसे अच्छी बुरी उचित और अनुचित बातों का ज्ञान नहीं होता। वह वही कार्य करता है जिसमें उसे आनन्द की प्राप्ति हो, भले ही वह नैतिक रूप से अवांछनीय हो। जिन कार्यों के फलस्वरूप उसे दुःख होता है, उन्हें वह छोड़ देता है।

(15) अकेले और साथ खेलने की प्रवृत्ति- यदि शिशु के व्यवहार का भली-भाँति निरीक्षण निरीक्षण किया जाय तो यह देखा जा सकता है कि उसमें पहले अकेले एकान्त में खेलने और बाद में दूसरों के साथ खेलने की प्रवृत्ति होती है। क्रो एवं क्रो ने लिखा है- "बहुत ही छोटा शिशु अकेले खेलता है। शनैः शनैः वह दूसरे बालकों के समीप खेलने की अवस्था से गुजरता है। से अन्त में वह अपनी आयु के बालकों के साथ खेलने में अपार आनन्द का अनुभव करता है।"

(16) सामाजिक भावना का विकास- शैशवावस्था के अन्तिम वर्षों में सामाजिक भावना का विकास होता है। वैलेण्टाइन ने लिखा है- "चार अथवा पाँच वर्ष के बालक में अपने भाई-बहनों अथवा छोटे साथियों की रक्षा करने की प्रवृत्ति होती है। वह दो से पाँच वर्ष तक के बच्चों के साथ खेलना पसन्द करता है। अपनी वस्तुओं में वह दूसरों को साझीदार बनाता है और दूसरे बच्चों के अधिकारों की रक्षा करता है तथा दुःख में उन्हें सान्त्वना देने का प्रयास करता है।"